पूर्वोत्तर सृजन पत्रिका : विशेषज्ञों द्वारा समीक्षित अर्धवार्षिक हिंदी ई-पत्रिका
वर्ष: 1, संख्या: 1; जुलाई-दिसंबर, 2020

अरुणाचल प्रदेश की मोनपा जनजाति का लोकजीवन

डॉ. सोनम वाङ्मू

अरुणाचल प्रदेश को 20 फरवरी, 1987 को पृथक राज्य का दर्जा मिला। भारत के पूर्वोत्तर के आठ राज्यों में से इस भूखंड का भौगोलिक और सांस्कृतिक दृष्टि से प्राचीन महाभारत काल से सीधा सम्बंध ब्रज और द्वारिका से रहा है। इस प्रदेश का सांस्कृतिक, ऐतिहासिक और भाषिक महत्व है। किरात वंशीय भीष्मक का कुंडिलपुर राज्य यहीं है, जिसकी राजधानी भीष्मक नगर थी। इस प्रदेश में रुक्मिणी के पिता राजा थे। यहाँ मालिनी थान नाम का एक मंदिर है। इसके बारे में प्रचलित है कि श्रीकृष्ण रुक्मिणी को ले जा रहे थे, रास्ते में शिवजी का मंदिर था, वहाँ रुके। रुक्मिणी को फूलों की माला बनाकर पहनाई गयी, जिसे देखकर पार्वती प्रसन्न हुईं और श्री कृष्ण से कहा कि वे अच्छे मालिनी (माला बनाने वाले) भी हैं। तभी से उस स्थान का नाम भी मालिनी थान हो गया। श्रीकृष्ण रुक्मिणी का हरण करके ले जा रहे थे तो रुक्मिणी के भाई रुक्मी ने उनका पीछा किया था। श्रीकृष्ण ने रुक्मी को मारने के लिए अस्त्र उठाया तो रुक्मिणी ने रोक दिया। बाद में श्रीकृष्ण ने रुक्मी का बाल काटकर छोड़ दिया। इदु मिश्मी जनजाति के लोग आज भी अपने सिर में आगे की तरफ से अपने बाल कटवाते हैं। पुरुष एवं महिला दोनों बाल कटवाते हैं। इस कारण इस जनजाति को चुली काटा जनजाति भी कहते हैं। इस तरह की कथाओं से ज्ञात होता है कि अरुणाचल का महाभारत काल से संबंध रहा है। श्रीकृष्ण रुक्मिणी को द्वारिका ले आए। इस तरह श्रीकृष्ण ने भारत के पूर्वी भाग से पश्चिम का सम्बंध स्थापित किया, जिस तरह राम ने देश के उत्तरी भाग को दक्षिण से जोड़ा था। इस कारण पूर्वोत्तर के राज्यों में अरुणाचल प्रदेश, जहाँ सूरज की पहली किरण भारत में जिस छोर से प्रवेश करती है, वही राज्य अरुणोदय की धरती है। इस धरती का नाम ही अरुणाचल प्रदेश है।

अरुणाचल प्रदेश एक आदिवासी क्षेत्र है। इसमें तमाम जनजातियाँ निवास करती हैं। विभिन्न जनजातियों की अपनी अलग-अलग बोलियाँ, धर्म और रीति-रिवाज़ प्रचलित हैं। यहाँ छब्बीस प्रमुख जनजातियाँ निवास करती हैं और यदि उनकी उपजातियों की गणना की जाए तो वह संख्या एक सौ के लगभग हो जाती हैं। सभी जनजातियों की अलग-अलग परम्परा, संस्कृति, पर्व-त्योहार और

आचार-संहिता हैं। इन जनजातियों के आनुष्ठानिक विधि-निषेधों में भी पर्याप्त भिन्नता है। इस प्रदेश को धर्म के आधार पर दो वर्गों में बांटा जा सकता है। प्रथम, बौद्ध धर्मावलम्बी जनजातियाँ और दूसरी आबोतानी समूह की जनजातियाँ। अरुणाचल प्रदेश की जनजातियों का एक बड़ा वर्ग बौद्ध धर्म में आस्था रखनेवाला है। इस प्रदेश की मोनपा जनजाति सबसे अधिक जनसंख्या वाली बौद्ध जनजाति है, जो कि महायान सम्प्रदाय का प्रतिनिधित्व करती है। दूसरी ओर हीनयान सम्प्रदाय के बौद्ध धर्म वाले भी हैं अर्थात् यहाँ महायान और हीनयान दोनों शाखाओं के लोग निवास करते हैं।

मोनपा जनजाति अरुणाचल प्रदेश के पश्चिम कामेङ ज़िला और तावाङ जिले में निवास करती है। सम्पूर्ण तावाङ जिले में यह जनजाति विद्यमान है और पश्चिम कामेङ ज़िले के दिराङ और खलाकताङ अंचलों में निवास करती है। यानी भौगोलिक दृष्टि से इसके तीन भाग किए जाते हैं - उत्तर की तरफ तावाङ मोनपा, मध्य में दिराङ मोनपा और दक्षणी तरफ खलाकताङ मोनपा।

मोनपाओं का सामाजिक लोकजीवन :

मंगोल मुख-मुद्रा वाले मोनपा जनजाति के लोग सम्पूर्ण तावाङ क्षेत्र में निवासरत हैं। इनकी परम्परा शुरू से ही धार्मिक रही है और इस जनजाति में बौद्ध धर्म की प्रमुखता होने के कारण लोग जीवन में भी बौद्ध धर्म के सिद्धांत 'मध्यम मार्ग' को अपने व्यवहार में लाकर उसे क्रियान्वित करने की कोशिश की जाती हैं। पाप और पुण्य के सिद्धांत भी जीवन में अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। मनुष्य को अपने कर्मों का फल भोगना पड़ता है, इसे भी यह जनजाति बखूबी समझती है। इसी कारण इस जनजाति के लोग अपने –अपने घरों में एक पूजा-घर अवश्य बनाते हैं। साथ ही वे सप्ताह या महीने में एक बार पूजा करवाने की कोशिश करते हैं। जब भी कोई बीमार पड़ता है, तो वे सबसे पहले 'रिनपोछे' अर्थात् धर्मगुरु के पास जाकर 'मो' (गणना करना) देखने देते हैं। फिर जो-जो पूजा घर में करवाने के लिए नाम निकलता है, वे सारी पूजाएँ घर में करवाते हैं। अगर फिर भी बीमार को आराम नहीं मिलता है, तो उसे अस्पताल ले जाने की कोशिश करते हैं। लेकिन प्राथमिकता उसकी पूजा करवाने की रहती है। पुराने समय में कम जानकारी के फलस्वरूप और साधन के कम होने के नाते ईश्वर को ही अपना आधार मानते थे। इस कारण शुरू से ही पूजा-पद्धति में लोगों का विश्वास रहा है। इसी धार्मिक विश्वास के चलते वैवाहिक जीवन शुरू होकर दो-तीन साल तक बच्चे का जन्म नहीं होता है, तो भी बड़े लामा(भिक्षु) के पास जाकर दाम्पति संतान-प्राप्ति की कामना से पूजा करवाते हैं। इस जनजाति में यह विश्वास है कि भगवान मानव जीवन का कल्याण ही करता है और हर कार्य भगवान के आशीर्वाद के बिना सम्भव नहीं है। मोनपा जनजाति के लोग स्वभाव से मिलनसार,

ईमानदार और अतिथि-सत्कार में कुशल होते हैं। मोनपा लोग ईमानदार, उद्यमी,अनुशासित और हँसी-मज़ाक वाले स्वभाव के होते हैं।

खान-पान और रहन-सहन :

अरुणाचल प्रदेश की अन्य जनजातियों से भिन्न मोनपा जनजाति में छ: प्रकार के खान-पान हैं और रहन-सहन में भी अंतर है। मोनपा जनजाति में दूध और दूध से बनी चीज़ों का भरपूर प्रयोग होता है। घी, दूध-मक्खन, पनीर और छेना आदि का प्रयोग अत्यधिक मात्रा में किया जाता है। इस जनजाति का खान-पान उनकी कृषि-भूमि में उत्पन्न होने वाली चीज़ों के ऊपर ही निर्भर है। प्राचीन समय में इस जनजाति में कोङप (मड़ुवा), को (गेहूँ), नाइ (जौ), क्यापक (फ्रैफ के आटे), मर छकपा (मक्खन) का प्रयोग रहा है, जो शरीर में गर्मी प्रदान करने के साथ-साथ शक्ति देता है। लेकिन वर्तमान समय में चावल, आटा और मैदा इनके मुख्य भोजन हैं। आधुनिकता के प्रभाव के कारण आजकल आधुनिक खान-पान का सेवन भी काफी ज़्यादा चल रहा है। पहले व्यक्ति शारीरिक श्रम अधिक करते थे और मोटापे की परेशानी कम देखने को मिलती थी, लेकिन वर्तमान में व्यक्ति खान-पान में मर(घी), मर छकपा (मक्खन), छुरबा (छेना) आदि नहीं छोड़ पाए हैं और दूसरी तरफ शारीरिक श्रम कम करते हैं, जिसके चलते इनके सेवन से अत्यधिक मोटापा के शिकार हो रहे हैं। इस जनजाति में सब्जियों में खे (आलू), क्येर (मूली), बन्दो (बेंगन), लौ (लौकी), ब्रुमशा (कद्दू), मुद (छत्रक), छिप्लम (शैवाल), सोलो (मिर्ची) और हरे पत्ते साग में चोङ (प्याज), किवलप (हरे साग), मन (हरे पत्ते वाला साग), लेश और छेत (लहसुन और लहसुन की ही प्रजाति), काह (अदरक), योङगा (हल्दी) आदि का प्रयोग किया जाता है। मिर्ची की एक विशेष चटनी, जिसे 'छमिन' कहा जाता है; सोयाबीन का भी एक छुरबा, जिसे ग्रेप छुरबा कहा जाता है, इनका भी प्रयोग किया करते हैं। यह जनजाति मांसाहारी है। ज़्यादातर याक, गाय, बकरी, सुअर, मूर्गी और मछली आदि के मांस का प्रयोग करती है। पहले के लोग सुअर, बकरी और मुर्गी को अशुद्ध मानकर इन्हें नहीं खाते थे, लेकिन अब सब खाया जाता है। मोनपा के यहाँ सूखा मांस खाने की परंपरा भी है। ठंडा मौसम होने पर याक और गाय मीट को छोटे-छोटे टुकड़ों में काटकर सुखा लिया जाता है।

फलों में तो (सेब), ग्ले (आड़ू), छेलु (संतरा), पलम (आलू बुखारा), अमरे(बेरी), कें (अखरोट), आदि का प्रयोग करते हैं। अन्य खान-पान में मोमो, थुकपा, ज्ञापा खज़ी, पुता, ब्रेसी, खुराज़नछङ, छिचिन क्योली, ख़ज़ी आदि का प्रयोग होता है। इस जनजाति में खान-पान यहाँ के भौगोलिक वातावरण पर निर्भर करता है। जो चीज जहाँ पैदा होती है, वह सम्भावत: खान-पान का मुख्य अंश बन जाती है।

इस जनजाति में पेय पदार्थों का भी प्रयोग होता रहा है। इसमें खासकर झा सुयु (मक्खन चाय)

मुख्य है, इसे स्थानीय चायपत्ती झातो शेङ नामक वृक्ष के सूखे पत्तों से बनाया जाता है। स्थानीय झातो के पत्तों को उबालकर, उन्हें छानकर उस छाने हुए चाय की पानी में मक्खन, नमक और दूध को मिलाकर 'अनदोङ' (चाय बनाने का बोतलनुमा बर्तन) में डालकर उसे ऊपर-नीचे करते हुए मथा जाता है-जब तक तीनों सामग्रियाँ यानी मक्खन, नमक और दूध चाय के पानी में मिल न जाएँ। यह जनजाति छंङ (शराब) की शौकीन है। तीन तरह की छंङ मिलती हैं। प्रथम बङ छङ, जिसे चावल, मड़ुआ और जौ को मिलाकर बनाया जाता है। द्वित्तीय के अंतर्गत सीङ-छङ है। इसे मड़ुआ, जौ,गेहूँ को दो – कोनी को भुनकर बनाया जाता है, इसमें रंग के लिए धान और कोदो-कोनी को डाला जाता है। सीङ-छङ को साल में एक बार यानी 'लोसर' अर्थात् नये साल में ही बनाते हैं या फिर किसी विशेष अवसर पर ही सीङ छङ को बनाते हैं। तृतीय के अंतर्गत 'आरा' बनाया जाता है। इसे भाप के द्वारा बनाया जाता है-जिसके लिए मक्का, गेहूँ,मड़ुआऔर चावल का प्रयोग किया जाता है। लेकिन वर्तमान समय में सारी प्रक्रिया गांवों तक ही सीमित रह गई है।

अरुणाचल प्रदेश की जनजातियों में मोनपा जनजाति ही ऐसी है, जो मकान को सु-सज्जित तरीके से बनाना बखूबी जानती है। मोनपा जनजाति के ही मकान सम्भवत: आयताकार के साथ-साथ द्विमंजिले होते हैं। धनी वर्गों के तिमंजिले भी देखने को मिलते हैं। गरीब वर्ग के लोग छेर-खेम अर्थात् बांस की झोपड़ी में रहते हैं। वर्तमान में बांस की झोपड़ी दुर्लभ है। मकान लकड़ी, पत्थर और लाल चिकनी मिट्टी से बनाया जाता है। पहले मकान बनाने में छुलेन देरम और देवदार के पत्तों को तथा बांस को भी प्रयोग में लाया जाता था, जिसे लाल चिकनी मिट्टी के साथ उसे मिलाकर बिछाया जाता था, जिससे कि मकान में गर्माहट बनी रहे। पहले मकान बनाने में स्थानीय 'खेम-पोन' यानी वास्तुविद की सलाह से पारम्परिक गृह निर्माण का कार्य किया जाता था, जबकि वर्तमान समय में सीमेंट के मकान लोग बनवाते तो हैं, लेकिन जानकार या अनुभवी कारीगरों से नहीं बल्कि सामान्य मज़दूरों से बनवाते हैं, जिन्हें यहाँ की जलवायु के अनुसार मकान बनाने की समझ नहीं है। यानी कि वे घर को पक्के या सही तरीके से बनाने में असमर्थ रहते हैं। पारम्परिक गृह निर्माण की परम्परा के अंतर्गत गांवों का चुनाव व्यक्ति अपनी सुविधानुसार करता है। गांव के चयन व्यक्ति, समूह, गांव का भौगोलिक और गोनपा (मठ) की स्थापना पर निर्भर करता है। इसी तरह मकानों के निर्माण हेतु स्थान का चयन भी व्यक्ति की सुविधा के साथ-साथ उस जगह की मिट्टी पर निर्भर करता है-यानी वह जमीन मकान बनाने योग्य है या नहीं। जिस जमीन पर मकान बनाना है, वहाँ लामा (भिक्षु) द्वारा 'सेरकीम' अर्थात् उस जगह को पवित्र किया जाता है, जिसमें कच्चे जौ, कच्चे चावल को चढ़ाकर उसके ऊपर छङ, दूध, चाय के पानी , जूस अर्थात्

किसी भी पेय पदार्थ को चढ़ाया जाता है, फिर लामा द्वारा मंत्रोच्चारण करके सेरकीम के द्वारा पूजा की जाती है। ज़म्बेयाङ अर्थात् ज्योतिषी के द्वारा काले हिरण के सींग से जमीन की मिट्टी को खोदा जाता है, अगर काले हिरण के सींग नहीं हैं, तो सुअर राशिवाले व्यक्ति से जमीन को खुदवाया जाता है। फिर शुभ दिन देखकर जगह निश्चित करने के पश्चात् भूमि-पूजन सम्पन्न करके मकान बनाने के लिए आधार-स्तम्भ अर्थात् नींव रखी जाती है, जिसमें सबसे नीचे चार कोने में पत्थर और लाल चिकनी मिट्टी के ऊपर जिक्पा अर्थात् दीवार को शुरू करके बढ़ाते जाते हैं। इसके बाद 'माखेम' अर्थात् ऊपरी मंजिल शुरू करते हैं। इसके नीचे का कमरा अर्थात् मकान का निचला सतह है जो ज्यादातर एक या दो कमरों में बांटा जाता है, उसे 'सारोङ' कहा जाता है। माखेम में ही घपचड़ (रसोईघर) , नेङ्बु (भीतरी कमरा) , गोम्बु और ज्ञाकङ को बनाते हैं। इसके ऊपर 'रावचे' और 'फाङचे' अर्थात् तीसरी मंजिल में पूजा कक्ष और 'अनाज घर' बनाया जाता है। पूजा कक्ष के पास एक खुला कमरा होता है-जिसमें पूजा-सामग्री और अन्य संबंधित सभी चीजों को रखा जाता है। उसी से जुड़ी एक कमरा जिसे 'ज्ञाकङचे' अर्थात् ज्ञाकङ का ऊपरी भाग कहा जाता है-उसमें पुजारियों के रहने की व्यवस्था करनी पड़ती है। अगर लम्बे समय तक लोग पूजा करवाते हैं , तो वहाँ पर पुजारियों के रहने की व्यवस्था करनी पड़ती है। घर के आगे अर्थात् सामने को 'दोउज़ी' अर्थात् आंगन कहा जाता है और बमचङ जिसे बरामदा कहा जाता है। शौचालय का निर्माण घर के बाहर की ओर किया जाता है। इसका निर्माण भी पत्थर , लकड़ी और लाल चिकनी मिट्टी से कराया जाता है। मुख्य मकान से सटकर ही शौचालय का निर्माण किया जाता है। मोनपा जनजाति में पारम्परिक रूप से मकान के निर्माण का जो काम किया जाता है, वह आज भी हर समाज में उपलब्ध है। आजकल उसका नाम वास्तु-शास्त्र रख दिया गया है, उसमें भी उसी चीज़ का ध्यान रखा जाता है, जो मोनपा जनजाति में पहले से ही निहित है।

वेशभूषा और आभूषण :

मोनपा जनजाति के लोग अधिकतर ऊनी वस्त्र ही पहनते हैं। इनमें लामा और अनि (भिक्षुओं और भिक्षुणियों) लाल, महरून और पीले रंगों के वस्त्रों का प्रयोग करते हैं, जो कमर के नीचे चुन्नट बनाकर पहना जाता है, वह ऊन का ही बना होता है और लाल और महरून रंग का होता है। बिना बटन वाली कमीज़ और शरीर के अधोभाग पर लाल रंग का वस्त्र पहनते हैं। अर्थात् लामा और अनि दोनों के पहनावे का रंग और आकार एक समान होता है, उसे बांधकर पहनते समय अपने शरीर के आकारानुसार छोटा या बड़ा किया जा सकता है। इनमें पुरुष वर्ग ऊन का पेंट, ऊन का कोट पहनते हैं, जिसे 'अलिफुदुङ ' स्थानीय भाषा में कहा जाता है। दूसरा पुरुष वर्ग ऐरी के तोतुङ अर्थात् 'खंजर' को धारण

करते हैं, टोपी पहनते हैं तथा महिलाएं ऐरी के गाउन, जिसे 'शिङका' कहा जाता है, उसे धारण करती हैं। इसे पहनते समय आगे की तरफ कमर के नीचे चार चुन्नट बनाकर पीछे कमर से कमरबंध को बांधते हुए पीछे ' तेङकिमो' से लपेटकर बांधा जाता है। ऊपर ऐरी एवं ऊन के जैकेट, कोट को पहनती है। तीन तरह के कपड़ों का निर्माण इस जनजाति में किया जाता है। पहली तरह के कपड़े 'थेरको' , दूसरी तरह के कपड़े 'पुमा' और तीसरी तरह के कपड़े को 'थेरमा' कहा जाता है। इन तीन तरह के वस्त्रों के आधार पर महिला, पुरुष, लामाओं और अनि लोगों के पहनने के कपड़े बनाने की परम्परा है। 'थेरको' वस्त्र से पुरुषों के लिए 'ख़ंज़र' अर्थात् अचकन जैसा पहनने का कपड़ा बनाया जाता है। इसी थेरको से ही महिलाओं के लिए 'थेरको तोतुङ' बनाया जाता है, जो ऊपर के ऊनी जैकेट जैसा होता है। 'पुमा' वस्त्र से पुरुषों के लिए 'च्छोई-छुबा' अर्थात् लाल रंग का घड़ा और मोटा कोट बनाया जाता है, जिसे पहनने के बाद 'खिचिन' अर्थात् कपड़े को हीरस्सी जैसे बांधा जाता है। 'पुमा' से महिलाओं की कमर के नीचे पीछे भाग में बांधी जानेवाली 'तेङकिमा' बनायी जाती है। इसी 'पुमा' नामक वस्त्र से 'थङा' अर्थात् कम्बल बनाया जाता है। अंतिम प्रकार का वस्त्र 'थेरमा' है जिससे लामा और अनि के द्वारा पहना जाने वाला 'शनदाव' बनाया जाता है,जिसे कमर के नीचे पहना जाता है। इसे कुछ एक दो तह के साथ दुहरी करके कमर में बांधा जाता है।

इस जनजाति में आभूषणों का प्रयोग भी अति प्राचीन समय से रहा है। आभूषणों के आधार पर समाज में व्यक्ति की पहचान अमीर और गरीब के रूप में होती है।आभूषणों में ज़्यादातर अंगूठी 'सोनङुप' नाम से जानी जानेवाली है। उसे पुरुष और महिला दोनों ही प्रयोग करते हैं। यह सोना और चांदी का बना होता है। चूड़ी अर्थात् ' ञनदुप' का प्रयोग महिला ही करती है। इसी तरह 'सोलोप' अर्थात् अंगूठी का प्रयोग महिला द्वारा ही होता है। यह भी सोना और चांदी का बना होता है। 'फ्रेङा' अर्थात् माला का प्रयोग भी महिला ही करती है। यह मूंगा, मोती और फिरोज़ा से बना होता है। वर्तमान में आभूषणों में नवीनीकरण के कारण परिवर्तन इस जनजाति में हो रहा है। सोने का प्रचलन अत्यधिक मात्रा में आज इस जनजाति में हो रहा है। मूंगा और फिरोज़ा वर्तमान में दुर्लभ हो रहा है। 'घोव' अर्थात् हार का प्रयोग बच्चे और बुजुर्गों के द्वारा ज़्यादा करने की परम्परा रही है। यह भी चांदी का बना होता है जिसके अंदर पवित्र मंत्र को रखा जाता है। इसके पीछे मान्यता या विश्वास यह है कि इस मंत्र के द्वारा बच्चे और बुजुर्गों पर कृपादृष्टि बनी रहेगी। कर्णफूली अर्थात् ' अलोङ' जो कि सोना या चांदी का बना होता है उसका प्रयोग प्राचीन समय में पुरुषों द्वारा किया जाता था। वर्तमान में इसका प्रचलन प्राय: समाप्त है। महिलाएं अपने कानों में छोटे आकार की कर्णमाला को धारण करती हैं। 'खरसेङ', जो चांदी

का बना होता है, उसे महिला ही प्रयोग करती है। मेंन, फ्रेंङ का प्रयोग महिला और पुरुष दोनों करते हैं। वे माला के मनकों को फेरकर चिंतनशील रहते हैं अर्थात् मंत्र जापने के लिए इसका प्रयोग करते हैं। यह कांच और लकड़ी का बना होता है।

व्यवसाय :

मोनपा जनजाति में जीवन की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए इनका मुख्य व्यवसाय पशु पालन, कृषि एवं कुटीर उद्योग हैं। इनके अंतर्गत लोग कागज बनाने, ऐरी के वस्त्र बुनने, ऊनी वस्त्र बुनने के अलावा हाथों से बनाए वस्त्रों में 'थेरमा', 'पुमा' और 'थेरको' का व्यापार कर वे अपनी जीविका चलाते हैं। पशु-पालन इनका मुख्य व्यवसाय है, जिसके अंतर्गत 'ब्रोकपा' वर्ग मर(घी), मर छकपा(मक्खन), छुरबा (छेना), फ्रोम (पनीर), वोमा (दूध) आदि का व्यापार भी करते हैं। साथ ही कुटीर उद्योगों की परम्परा अति प्राचीन रही है, जिसके अंतर्गत लोग कागज बनाने, ऐरी के वस्त्र बुनने जैसे न जाने कितने ही काम करते थे, लेकिन वर्तमान में लोगों के द्वारा गांव से शहर में नौकरी और व्यवसाय हेतु स्थानान्तरण के कारण पेशागत परिवर्तन, यातायात के साधनों में विकास और नारी शिक्षा पर जोर देने के चलते कुटीर उद्योग लगभग खत्म होने पर ये कुटीर धंधे सिमट गए हैं। कुटीर उद्योग पहले जो चलता था, वह यातायात के साधनों के अभाव में गांव से बाहर नहीं निकल पाता था, जबकि आज के समय यातायात के प्रचुर साधन होने के बाद कुटीर उद्योग धीरे-धीरे शिथिल हो गए और लोग बाज़ारों पर निर्भर हो गये हैं। प्राचीन समय में वस्तु-विनिमय का प्रचलन रहा है, वर्तमान समय में ज़्यादातर लोग कपड़ों का व्यापार बड़े पैमाने पर कर रहे हैं- खासकर शिङका, तोतुङ और पारम्परिक जूता (चेम ल्हम) , जेकैट (थेर को तोतुङ) ,अचकन (खंजर) और अलिफुदुङ आदि का निर्माण करते हैं। पहले ठंड के मौसम में घर-घर ऊन बनाने की परम्परा रही है जबकि आज कुछेक लोग ही ऊन बनाते हैं, वह भी व्यवसाय के तौर पर। पहले कपड़े के जूतों का प्रयोग होता था, जो स्थानीय लोग ही बनाते थे , किंतु आज ग्रामीण क्षेत्रों तक कारखानों में निर्मित जूतों एवं चप्पलों का प्रचलन शुरू हो चुका है। उपर्युक्त व्यवसाय की पद्धति धीरे-धीरे समाप्तप्राय होती जा रही है। इसका मुख्य कारण है जीविकोपार्जन के नए मार्ग अपनाने के लिए लोगों का गांवों से शहर की ओर उन्मुख होना। इसके चलते लोग न पशुपालन कर रहे हैं और न ही अपना उद्योग चला रहे हैं।

विवाह एवं अन्य संस्कार :

विवाह एक सामाजिक और आर्थिक बंधन है। इसके लिए प्राय: कोई न कोई संस्कार या पद्धति होती है। इस जनजाति में विवाह को 'ञेन' कहा जाता है। इस जनजाति में भिक्षु और भिक्षुणियों को छोड़कर सभी विवाह कर सकते हैं। इस जनजाति में मुख्यत: एकल विवाह-प्रथा का ज़्यादा प्रचलन है। लेकिन बहुविवाह प्रथा की बात की जाए तो दो

वर्गों-ख्रइपा (कृषक) और ब्रोकपा (पशुपालक) में बहुपति प्रथा का चलन सीमित आमदनी में परिवार के उचित निर्वाह को ध्यान में रखकर किया गया था। यहाँ के पहाड़ी अंचलों में अनाज का पैदावार कम था और मात्र खेती पर निर्भर होकर परिवार का निर्वाह सम्भव न था। दूसरी ओर पशु और पशु उत्पादक पर निर्भर रहकर भी परिवार का निर्वाह सम्भव न था। अत: परिवार के आकार को सीमित रखने की यह एक सामाजिक प्रक्रिया थी। पहले इस समाज में रोइख्राङ (जाति-व्यवस्था) प्रचलित था। इसी कारण से आपस में जितना भाई-चारा और सौहार्द होना चाहिए उतना नहीं था, लेकिन आज यह व्यवस्था प्रायः समाप्त है। यहाँ तक कि विवाह जैसे पवित्र सम्बंधों में भी रोइख्राङ महत्वहीन होता जा रहा है। पहले मोनपा जनजाति अपनी इसी व्यवस्था के कारण अपने ममेरे, फुफेरे भाई-बहन के साथ विवाह सम्पन्न किया करता था। लेकिन धीरे-धीरे इस संबंध को समाज नकारने लगा, क्योंकि वैज्ञानिक आधार पर यह संबंध नहीं था। ज्यों-ज्यों शिक्षा का प्रचार-प्रसार होने लगा, लोग सही और गलत में भेद करने लगे और सही चीज़ों को लाने की कोशिश करने लगे। शिक्षा, संचार-व्यवस्था और जनसंचार माध्यमों के चलते समाज में जागरूकता आई, जिससे इस समाज में बहु-विवाह प्रथा प्राय: समाप्ति के कगार पर है। इस जनजाति के समाज में विवाह के लिए कोई कठोर नियम नहीं है। स्वयं लड़की की इच्छा पर निर्भर होता है कि शादी करनी है या नहीं। इस जनजाति में माता-पिता वर ढूँढ़ने का कार्य नहीं करते। लड़के वालों की तरफ से मध्यस्थ यानी 'फ्रेनपा' ही लड़कीवालों के घर शादी की बात करने आता है। ऐच्छिक विवाह पद्धति होने के कारण लड़की को पूर्ण स्वतंत्रता है कि वह उस लड़के से शादी करे या न करे। जब शादी की बात करने आता है तो 'फ्रेनपा' ही तीन बोतल सोमरस यानी स्थानीय 'छङ' लेकर आता है, इसे 'क्रुङ छङ' अर्थात् शुरू आती छङ कहा जाता है। इसी के बाद जब लड़की वालों से सकारात्मक जवाब मिले तो फ्रेनपा ही अधिक मात्रा में छङ लेकर आता है, उसे 'ज़ेर छङ' अर्थात् 'मंगनी छङ' कहा जाता है। इसके पश्चात् तृतीय चरण में एक अच्छा-सा शुभ दिन देखकर फ्रेनपा के साथ सगे- सम्बंधियों को भी लड़की के घर में जाना होता है। इस नियम को 'थिक छङ ' अर्थात् पूर्णत: तय छङ कहा जाता है। इस दौरान संबंधों को पूर्णत: तय माना जाता है। फिर रिश्ता तय किया जाता है। फिर शादी के लिए मुहूर्त, विदाई की बात की जाती है, तब लड़के वालों की तरफ से लड़की के सभी सगे-संबंधियों को 'पदर छङ ' यानी निमंत्रण भेजा जाता है,जिसमें छंङ और रुपये साथ में होते हैं। रुपये की कोई निश्चित राशि तय नहीं होती। इसमें पांच रुपये से लेकर 500/ तक हो सकता है। अंत में 'पक छङ' अर्थात् विदाई छङ के द्वारा जम्बेयङ अर्थात् ज्योतिषी जी के द्वारा दिन तय करके उसे कब घर से निकलनी है, ससुराल में प्रवेश करने का समय आदि तय किया जाता है।

'पदर छङ' में जोछङ के साथ जो 5 रुपये से लेकर 500 तक थे, उस दिन धन राशि दुगुने रूप में वापस कर दी जाती है। यानी पदर छङ में 5 रुपये दिये जाते हैं, तो वापस 10 रुपये दिये जाते हैं। अगर हज़ार था तो दो हज़ार हो जाते हैं। लेकिन पदर छङ हमेशा कम धनराशि में ही होता है। यानी 500 रुपये तक है, तो एक हज़ार हो जाते हैं। पदर छङ की धन राशि पर नव दम्पति का अधिकार होता है। जिस दिन विदाई होती है तब लड़की के परिवार वाले खासकर मामा, पिता और भाई ससुराल में जाकर लड़की के कन्या-मूल्य की बात करते हैं, जिसे 'दोङजन' कहा जाता है। इसके बाद तीन दिन तक ससुराल में लड़की के पिता, मामा और भाइयों की खातिरदारी की जाती है-जिसमें छङ पीना, गाने गाना, नाचना सब चलता है। फिर, तीन दिन बाद लड़की अपने घर पिता, मामा और भाई के साथ वापस आती है। फिर पुन: ससुराल में जाकर रहने लगती है। अगर रिश्ता तय होने के बाद लड़की वाले शादी के लिए राज़ी नहीं होते, तो लड़के का जितना खर्च हुआ है, उसे लड़की वालों को दुगुना चुकाना पड़ता है। मोनपा जनजाति में विवाह संस्कार के साथ ही बच्चों का नामकरण संस्कार भी जुड़ा हुआ है। अगर लड़की पैदा होती है तो सात दिन बाद शुद्धीकरण माना जाता है और लड़का पैदा होता है तो पांच दिन बाद शुद्धीकरण माना जाता है। इस कारण बच्चे के जन्म के पांच और सात दिन बाद रिनपोछे अर्थात् धर्मगुरु के पास नामकरण अर्थात् टापुछे के लिए बच्चे को लेकर जाते हैं। वहाँ रिनपोछे बच्चे के सिर के बीच वाले भाग से कुछ बालों को काटकर और मंत्रोच्चारण करके बच्चे का नामकरण कर देता है। इसके पश्चात् बच्चा एक साल का हो जाता है, तो उसका मुण्डन करवाया जाता है। मुण्डन की प्रक्रिया मामा द्वारा पूर्ण की जाती है, जिससे बच्चा जल्दी बोलना सीख जाए।

लोकपर्व और त्योहार :

मोनपा जनजाति में मनोरंजन के भी कई रूप देखने को मिलते हैं, जिन्हें यह जनजाति अनेक लोकपर्वों और त्योहारों के द्वारा पूरा करते हैं। किसी भी संस्कृति में लोकपर्वों और त्योहारों का अन्यतम स्थान होता है। त्योहारों के माध्यम से किसी समाज के धर्म, संस्कृति और सभ्यता की पहचान होती है। एक प्रकार से लोकपर्व और त्योहार लोकजीवन के सांस्कृतिक आधार हैं। मोनपा जनजाति में मुख्यत: तीन वर्गों के आधार पर लोकपर्व और त्योहार मनाये जाते हैं। प्रथम में सामाजिक त्योहार, द्वित्तीय में धार्मिक त्योहार और तृतीय में धार्मिक और सामाजिक त्योहार आते हैं। लोकपर्व कृषि से जुड़ा है। कुछ लोकपर्व समुदाय के सदस्यों द्वारा या फिर कुछ लोकपर्व परिवार के सदस्यों द्वारा मनाये जाते हैं। सामाजिक लोकपर्व और त्योहार में लोसर उल्लेखनीय है। धार्मिक लोकपर्व और त्योहार में तोरज्ञा, सङदुइ,साका, दावागुन्दन ङमछो आदि महत्वपूर्ण हैं। तीसरे में धार्मिक-सामाजिक लोकपर्व और त्योहारों में छोइकोर है, फ्ला, ज़ोम, छेह, ज्ञेत,

छेह, चीह, छहे, चिलेङ आदि हैं। मोनपा जनजाति लोसर को यानी नये साल को फरवरी के अंत और मार्च के शुरू के दिन को मनाती हैं। इस त्योहार का प्रचलन प्राचीन समय से रहा है। सामाजिक लोकपर्व लोसर को बड़ी धूमधाम से मनाकर मोंपा लोग अपनी संस्कृति को पुन: जीवित रखने की अदम्य इच्छा और लालसा को ही पूर्ण करते हैं। धार्मिक लोकपर्व और त्योहार में तोरज्ञा का एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है। यह लोकपर्व तीन दिन तक गोनपा (मठ) में मनाया जाता है और उन तीन दिनों में बाईस प्रकार के नृत्यों की प्रस्तुति गोनपा के आंगन में होती है। अर्थात् सभा कक्ष के सामने प्रस्तुत किये जाते हैं। ये सभी नृत्य धार्मिक और नैतिक दृष्टिकोण से काफी महत्वपूर्ण हैं। इन नृत्यों में वेशभूषा और मुखौटे का अपना अलग ही महत्व होता है। पात्र की उपयुक्तता के हिसाब से उनके परिधान और मुखौटे होते हैं। इस धार्मिक लोकपर्व के अंतर्गत धर्म और संस्कृति को दिखाया जाता है। इस धार्मिक लोकपर्व में बौद्ध धर्म की महायानी शाखा के धार्मिक और नैतिक उपदेशों को दृश्य के माध्यम से प्रस्तुत करने का अनोखा प्रयास होता है। इन नृत्यों में तांत्रिक प्रविधियों का भी प्रचुर प्रभाव दीखता है। अन्य नृत्य के द्वारा बुराई के अंत तथा पूर्व जन्म के कर्मों के द्वारा वर्तमान जन्म में पड़ने वाले प्रभावों का मनोहारी दृश्य प्रस्तुत किया जाता है। अन्य नृत्य में- एक महान और दयालु व्यक्ति जो है, वह बौधिसत्व को प्राप्त करता है और जो पापी है उसे किस तरह सज़ा मिलती है, उसे दर्शाया जाता है। दुष्कर्म का परिणाम कैसा होता है, इन चीज़ों को भी नृत्य के माध्यम से प्रस्तुत किया जाता है। एक अन्य नृत्य के माध्यम से देवी-देवताओं द्वारा मानव के प्रति दया, प्रेम, अहिंसा और मानवता के उपदेश दिये जाने, पड़ोसी देशों में मैत्री के संदेश देने जैसे गोपनीय विषयों को प्रस्तुत किया जाता है।

किसी भी संस्कृति में लोकपर्व और त्योहारों का अन्यतम स्थान होता है। लोकपर्व और त्योहारों के माध्यम से किसी समाज , धर्म , संस्कृति और सभ्यता की पहचान होती है। एक प्रकार से लोकपर्व और त्योहार लोकसंस्कृति का दर्पण होता है। फलत: लोकपर्व और त्योहारों का समय, मनाने का ढंग और लोकपर्व एवं त्योहार के अवसर पर प्रयोग में आने वाली वस्तु आदि कृषि से जुड़े होते हैं। मोनपा जनजाति के लोकपर्व और त्योहार में भी यही परिलक्षित होता है।

लोकनृत्य :

लोकनृत्य वस्तुत: प्राकृतिक नृत्य है। लोकजीवन में जहाँ भी भावुकता के लक्षण आते हैं वहीं उसके अनुकूल किसी न किसी प्रकार के नृत्य का रूप प्रकट होने लगता है। नृत्य का संबंध तो मानव ने जब संस्कृति का विकास किया तब से ही है। लोकनृत्यों में सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन की झलक मिलती है। जीवन के विविध विषय लोकनृत्यों द्वारा प्रकट किए जाते हैं। अच्छी फसल, अच्छे स्वास्थ्य, संतान-वृद्धि , भूत-प्रेत निवारण, विवाह, जन्म,

मृत्यु, पर्व-त्योहार आदि की कामना के लिए अनेक अवसर पर लोकनृत्य प्रस्तुत किए जाते हैं।

मोनपा जनजाति में नृत्य-नाटिकाओं की प्रमुखता है और इन नृत्य-नाटिकाओं में किसी मिथकीय या जनश्रुति पर आधारित कथा या किसी नीति या उपदेशपरक तथ्य को वे नृत्य के माध्यम से प्रस्तुत करते हैं। इन नृत्यों का उद्देश्य केवल मनोरंजन करना ही नहीं, अपितु लोगों को शिक्षित करना , जागरूक बनाना और जीवन के आदर्श मूल्यों को स्थापित करना होता है। इस जनजाति में नृत्य के प्रशिक्षण की व्यवस्था भी रहती है। नृत्य के उद्गम की कथा भी अन्य जनजातियों से भिन्न है। तावाङ मोनपा के 'अझिल्हामो' नृत्य मोनपा लोककथा पर आधारित है। इस नृत्य का निर्माण एक सामाजिक दायित्व की पूर्ति के लिए किया गया और वर्तमान समय में भी यह नृत्य इसी दायित्व की पूर्ति करता है।

मोनपा जनजाति का लोकजीवन संघर्षपूर्ण एवं अभावग्रस्त था। किंतु सामान्यत: तनाव व कुण्ठा से सर्वथा रहित हुआ करता था। जीने के लिए आवश्यक भोजन-वस्त्र की जो भी व्यवस्था होती थी उसी में यह जनजाति संतुष्ट रहती थी। भौतिक विकास के प्रभाव से यह जनजाति अछूती नहीं रह रही है। विकसित मोनपा जनजाति अपने क्षेत्रों से पलायन कर शहरी या सुविधाजनक स्थलों में आश्रय ले रही है। इस जनजाति के पारम्परिक व्यवसाय भी कम मात्रा में दृष्टिगत हो रहे हैं। उनकी लोक संस्कृति भी भौतिकवाद से प्रभावित हो रही है, किंतु विशेष पर्व या अवसरों पर यह जनजाति अपनी संस्कृति की छवि प्रस्तुत करती रहती है।

संपर्क सूत्र:
एसोशियट प्रोफेसर, हिंदी विभाग
बिन्नी याङ शासकीय महाविद्यालय, लेखि
नहारलगुन, अरुणाचल प्रदेश